प्रेरणा के मोरपंख

डॉ. कर्ण सिंह



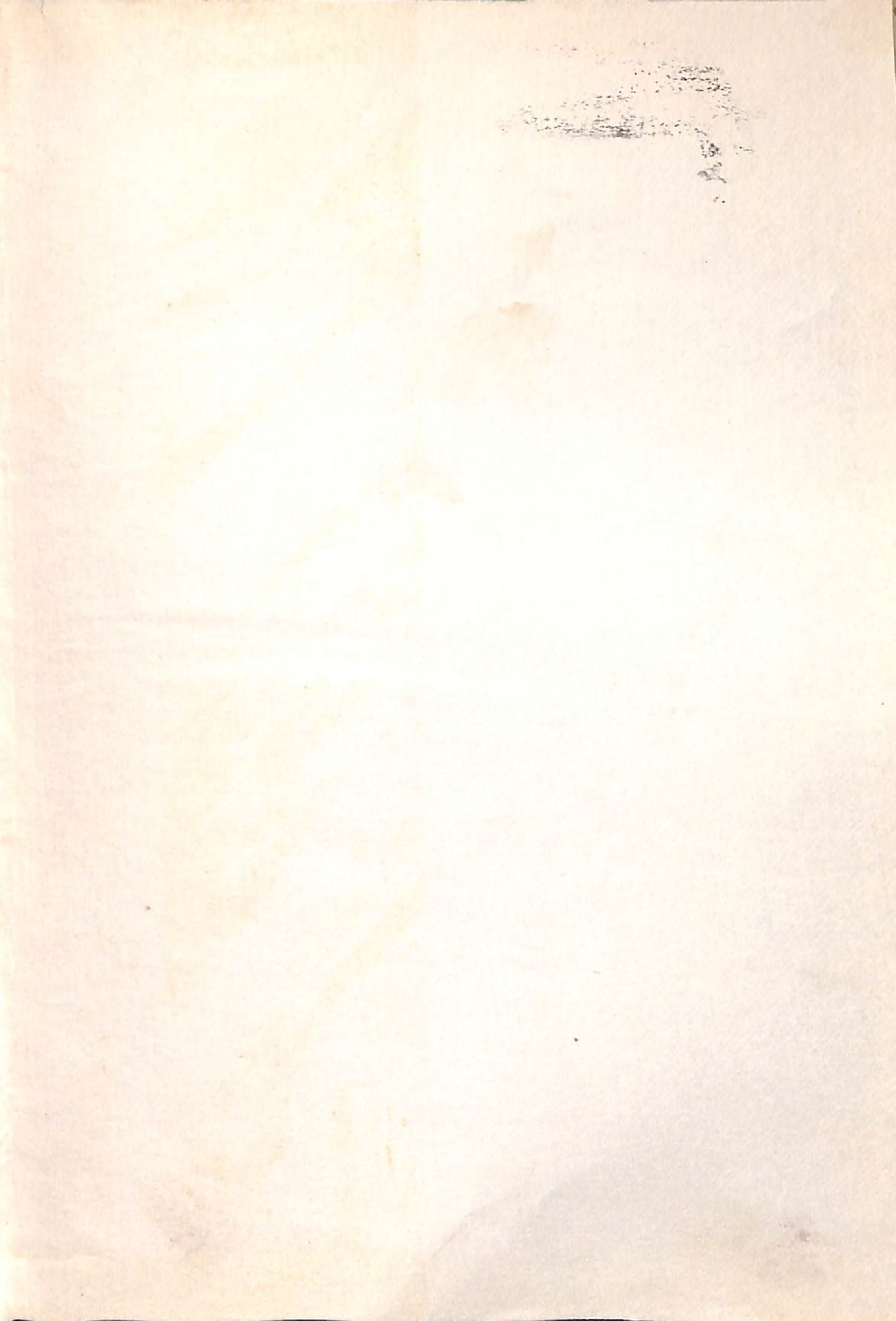
भारतीय
ज्ञानपीठ
प्रकाशन

हिन्दी के प्रबुद्ध पाठकों के लिए डॉ० कर्ण-सिंह की सर्वतोमुखी प्रतिभा का एक आकर्षक आयाम यह काव्यकृति 'प्रेरणा के मोरपंख' प्रस्तुत कर रही है। डॉ० कर्णसिंह की कविता का लालित्य, रोमांस और गहन भावानुभूति को लय से उत्पन्न दार्शनिक झंकृति उन की कवि-कल्पना के अत्यन्त प्रीतिकर उपादान हैं। डॉ० कर्ण-सिंह ने मूल कविताएँ यद्यपि अँगरेज़ी में लिखी हैं, किन्तु इन का परिवेश सम्पूर्ण रूप से भारतीय है और उत्स उन के हृदय के निजी स्पन्दन। इसी लिए उन की कविताएँ उस माध्यम का प्रतिनिधित्व करती हैं जिसे 'आँग्ल-भारती' की संज्ञा दी जाती है।

निश्चय ही अनुवाद इस रूप में सफल है कि एक अत्यन्त आकर्षक कवि-व्यक्तित्व के अन्तरंग का परिचय ये अनूदित कविताएँ प्रामाणिक ढंग से प्रस्तुत करती हैं। किन्तु, यदि काव्य का सम्पूर्ण रस और व्यंजना का अखण्ड चमत्कार प्राप्त करना है तो प्रत्येक कवि-हृदय को इस अनुवाद के माध्यम से मूल तक पहुँचना ही होगा।

कवि की अनुभूतियों के सार्थक प्रतिबिम्ब को प्रस्तुत करते हुए श्री कौशिक ने ठीक ही लिखा है :

"जब मन गुंजरित हो तो शब्दों की तूलिका समर्पण की चुनरिया ओढ़ थिरकने लगती है। गीतों के नूपुर और उन का सम्मोहन ...... कौन आकर्षित नहीं होगा इस झंकृति की ओर?"



प्रेरणा के मोरपंख

डॉ० कर्णसिंह

•



भारतीय
ज्ञानपीठ
प्रकाशन

प्रेरणा के मोरपंख

मूल : डॉ० कर्णसिंह

अनुवाद : राजेन्द्र मोहन कौशिक

भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन

लोकोदय ग्रन्थमाला : ग्रन्थांक–३०१

सम्पादक एवं नियामक :

लक्ष्मीचन्द्र जैन



Lokodaya Series : Title No. 301

PRERANA KE MORPANKHA

(Poems)

Dr. Karna Singh

Bharatiya Jnanpith

Publication

First Edition 1970

Price Rs. 4.00



भारतीय ज्ञानपीठ

प्रधान एवं विक्रय कार्यालय

३६२०।२१, नेताजी सुभाष मार्ग, दिल्ली–६

प्रकाशन कार्यालय

दुर्गाकुण्ड मार्ग, वाराणसी–५

प्रथम संस्करण १९७०

मूल्य ४.००

सन्मति मुद्रणालय,

वाराणसी–५

192

अपनी ओर से

●

चम्पा···चमेली···जूही···रजनीगन्धा···कलियों से बना एक मनहर अन्तरिक्ष यान···कल्पना की आयामहीन नीलिमा में उड़ता मन···इन्द्रधनुषी राहों में समय के अनन्त-आयामी सोपानों का पथिक। सर्जना के ऐसे सम्मोहक क्षणों में कवि की रचना नितान्त निजी और इस लिए निरुपम होती है। आत्मिक संगीत का यही चिरन्तन सौन्दर्य गायक का सहज-स्वतन्त्र अन्तरंग है। जब मन गुंजरित हो तो शब्दों की तूलिका समर्पण की चुनरिया ओढ़ थिरकने लगती है। गीतों के नूपुर और उन का सम्मोहन···कौन आकर्षित नहीं होगा उस झंकार की ओर?

इन गीतों के रचयिता दार्शनिक हैं, कवि हैं और राजनेता भी। युवा-हृदयों के आकर्षण केन्द्र डॉ० कर्णसिंह का व्यक्तित्व है सुभाष-सा अधीर, और बापू-सा प्रशान्त।

सरस्वती के राजदुलारे डॉ० कर्णसिंह आज माँ-भारती के चरणों में अपनी अथक सेवा के सुमन समर्पित कर रहे हैं। उन का इन्द्रधनुषी व्यक्तित्व नवभारत में एक अपूर्व क्रान्ति का प्रतीक है। वे अतीत और वर्तमान को जोड़ कर एक नये भविष्य का निर्माण करने में व्यस्त हैं। उन की इसी मनोरम साधना को साकार देखने की अभिलाषा लिये मैं उन के निकट आया यह मेरा सौभाग्य है।

उन से निकट सम्पर्क के कुछ गिने-चुने क्षणों में मैं ने जो पाया, वही मेरी सिद्धि है। मन की सतरंगी अवस्थाओं में, गुलमर्ग के हिमानी वातावरण में, डल के रोमानी एकान्त में और सागर को किसी विरहाकुल उथल-पुथल में लिखे गये इन अँगरेज़ी गीतों का हिन्दीकरण उन के प्रति अपने आभार को प्रकट करने का एक साधन मात्र है और है एक प्रयत्न भारत के बुद्धिजीवियों को गीतकार के ऋद्धिमय व्यक्तित्व की एक झलक दिखाने का।

प्रस्तुत अनूदित कविताएँ कवि की मानस तरंगों को पाठकों तक पहुँचाने में कितनी सक्षम हो सकेंगी, यही मेरी सफलता अथवा असफलता की कसौटी होगी। अनुवादक की सीमाओं से पाठक अच्छी तरह परिचित हैं। कवि की अनुभूतियों के चित्र यदि सार्थक रूप से प्रतिबिम्बित हुए तो मैं अपने को धन्य समझूँगा।

—राजेन्द्र मोहन कौशिक

अनुक्रम

० ० ०

अपरिचित मित्र

मेरे अज्ञात,
अपरिचित कोई !
हम मिल पायेंगे अवश्य ही
उर में है विश्वास गूँजता
पर कब, कैसे ? नहीं जानता
और मचलता स्वर गर्जन का
ज्यों गम्भीर समुद्र बुलाता
कहीं दूर से अनजाने में
मन बिंध जाता;

तभी प्रखर-सी ज्योति खींचती
मुझ को सतरंगी आँचल में
वहीं कहीं पर तुम पुकारते
जाने किस गिरि-गहन गुहा से
किस वनान्त में मुझे ढूँढ़ते;

तुम को पा लेने को आतुर
मैं हर सम्भव उत्तर देता
पर प्रतिध्वनियाँ टकरा कर
निष्फल खो जातीं
किन्हीं अनकहे, अनचाहे-से वीरानों में
मुझे छोड़ कर बँधा विवशता के बन्धन में
घिरा हुआ चीख़ों से पीड़ित मानवता की
व्यथित निराशा के सागर में;

वहीं खड़ा मैं ठगा हुआ-सा
आहों की नगरी एकाकी
तुम्हें ढूंढ़ता मित्र ! अपरिचित !
बसे हुए जो मेरे भीतर ।

रात एक : रंग तीन

निशा : तारों जड़ी
फूटती असंख्य रजत किरणें
अँधेरे को कँपाती हुई
शून्य की बाधाएँ तोड़ती
हमारी चेतना की धड़कन बन जाती है

रजनी : प्रेम महकी
विचित्र, उदास, गम्भीर
शरीर का मांसल मोह तोड़
मन लौटाये लिये चलती है
सूक्ष्म की ओर

रात्रि : मृत्यु का मुखौटा पहने
नीरव, काली, सुनसान
लम्बी यात्रा की समाप्ति
उस पार सत्य से
अगोचर का साक्षात्कार है ।

सम्मोहन

पीली धूप का
पारदर्शी
चमकता वितान—
भीतर
पहाड़ियों की गोद में लेटी
नीली झील;
अन्तर के कोने-कोने पैठी
झनझनाती ख़ामोशी—
केवल ख़ामोशी,
मेरे चेहरे पर
उछलता-कूदता
हवा का
ठण्डा, सुखद झोंका
शान्ति की फुहार में धुलती
भय-चिन्ता-मुक्त
मेरी आत्मा;
दूर तक
किनारे-किनारे चली गयी
सफ़ेदे की
हवा में
अठखेलियाँ करती क़तारें—
शान्त, गहरी डल में
हिलती-डुलती परछाइयाँ
मानो
इठलाती सरकती झालर;

अभी भी
जीने की आस लिये
सजे-बजे खड़े
बूढ़े
ख़मदार
भारी-भरकम चिनार;
सुनहरे धान की नाचती बालियाँ,
हरिया मैदानों में हँसते
मनहर फूलों के छींटे,
नीले आकाश में
खेलते-किलकते
नन्हें-नादान बादल;
अनूठा समाँ—
विश्व के कपोलों पर फैली
लजीली अरुणिमा
और
प्रकृति नटी के
जीवित सौन्दर्य का साक्षी
मैं…………

बदरा भर आये

आवारा बदलियाँ
मदमाती मौज में बहतीं
नीलाकाश में
करवटें बदल-बदल
कभी तो
घुल कर
अपना अस्तित्व ही खो देती हैं
या धर लेती हैं रूप
अनसुने
मायावी—
झुकते दुर्ग
लुढ़कती मीनारें
कल्पना नगरों को निगलती आग
नन्हीं बूँदों के रेशमी क़ाफ़िले।

बादलों से लदी
मदमस्त बनी हवा
तरल अन्तरिक्ष में
गिरती-चढ़ती
दौड़ती-भागती
नदी
नाले
झील
सागर-दर्पणों में झांक
अपना प्रतिबिम्ब देख

गौरव से भर उठती हैं
जैसे
हिनहिनाता घोड़ा,
नृत्य मुद्राओं में खिलती
आकर्षक मुग्धा ।

नीलकण्ठ

हिममण्डित कैलाश
समाधिस्थ बैठे शंकर तुम
नयन अधखुले
गहन ध्यान में
शान्त, मौन बन
शक्ति समेटे
आभादायी
जगत् झूलता
जिस में प्रतिपल;
दिव्य ज्योति-सी
कंचन-काया
चमक रही है
जैसे दिनकर
नमन कर रहा,
चढ़ा रहा हो चमचम किरणें—
और देखते देव
तुम्हारी महिमा को
प्रमुदित
करते हैं
पुलकित हो
स्तवन तुम्हारा :
'उलझे-उलझे
केश-गुच्छ ये
गंगा धारे
नाग लपेटे

भस्म रमाये
अंग-अंग पर
डमरू और त्रिशूल सजाये;
नीलकण्ठ !
तुम
घट-घटवासी
जीवनदानी
प्रलयंकर भी
अमर सिन्धु भी
जहाँ तैरती
सृष्टि
सँभाले
भूत, भविष्यत्, वर्तमान को।

पुनर्जीवन

समय की डाली पर उगा हुआ एक क्षण
निराशा का ऑक्टोपस
आत्मा की धरती पर
रेंगता-फिसलता है
प्रेरणा को झकझोरता है
दीप सब अन्तर के
अकस्मात् मन्द पड़ते
और फिर उभरता है
मरणप्राय चेतना की
जीर्ण-शीर्ण काया से
मौन एक बर्फ़ीला
और विश्व लुप्त होता
शून्य में अनन्त के

दैनन्दिन कामों की हलचल
जो भरती है जीवन को
अस्तव्यस्त उलझन से
रचती बवण्डर
भयानक, दुर्धर्ष एक
आशा की किरण ज्यों ही
अँधियारा घना जान
आत्मा के आँचल से
मुक्त होना चाहती है
शैतानी हास तभी
बढ़ता है

अवसर उपयुक्त जान
लौट आता
वायु का झकोरा नया
फुसफुसाता
मुरझाये पातों में
सिहरन-सी दौड़ जाती
झील में विचारों की
एक रजत लहर उठती
देती संकेत मानो
पास-पास रहते
आनन्द और ज्ञान हैं
और है
वही सब का शरणदाता
मार्गदर्शक बनती है शक्ति जिस की

दूरी चाहे जितनी हो
दुर्गम हो पथ भी चाहे
बढ़ता चला जाता किन्तु
कारवाँ निरन्तर
उस रहस्य की दिशा में
जो आधार है जीवन का
उस तेज की दिशा में
जो लक्ष्य है मृत्यु का।

शाश्वत अनन्त

शान्त, निद्रामग्न : शाश्वत
सागर अनादि
सम्मोहित, झंकृत
युगों से पड़ा है टिका
अतीतों की इन्द्रधनुषी पाँखों-सा
अनन्त की छाती
अथाह, असीमित;
ज्वार
भाटा
लहरें थिरकतीं
दैवी स्वरों में
नक्षत्र-संगीत की धुन अजानी
आनन्द आप्लवित
आत्मा सनातन
अव्यक्ता, मधुर मौन
बीते प्रकाशवर्ष
कितने ब्रह्माण्ड ढले
शून्य में समय-चक्र कितनी ही बार चला।

ज्ञानी

ज्ञानी
ध्यानमग्न
एकाकी
बैठा
उस के
मन:क्षितिज पर
खिंचते
मिटते
फिर-फिर बनते
स्वप्न सुनहले
मनमोहक क्रम प्रत्यावर्तित।
रस-बौराई
मगन तितलियाँ नाच रही ज्यों;
दूर कहीं
बहते झरने की
कलकल ध्वनि से
उठती
एक पुकार अजानी और अनसुनी,
मोहक वंशी की स्वर-लहरी!

मेरे मित्र

(मैं अर्जुन····तुम कृष्ण)

सौन्दर्यजयी भव्यता से सजी सँवरी
निराली मानव-मूर्ति
साकार निरुपमा
मेरे मित्र !
तुम्हारी सस्मित आँखें
सँजोये हैं
अनोखा आकर्षण :
जीवन की उथल-पुथल
हर्ष विषाद !

झिलमिल विश्व—
विस्तार को नापती
तुम्हारी शान्त दृष्टि
अन्तर की जड़ता को उद्वेलित करता
तुम्हारा मुक्त हास्य,
शक्तिदायी
तुम्हारा अनुपम स्पर्श,
आशा-साहस-नवजीवन
बोझिल मन के निस्तार
तुम्हीं तो हो, मेरे मित्र !

रात बरसात की

मेघ गर्जन
चीरती बरसात
दहले वृक्ष;
भँवर पानी
पवन घेरी पत्तियाँ
वृत्त घूमीं;
दामिनी दमके
घनेरी बर्फ़बारी
हवा बोझिल;
गिरते ओले
धरा गूँजे
दिशा व्याकुल;
मिलें प्रेमी
हृदय धड़कें
रात काँपे;
परछाँइयाँ हिलतीं
अँधेरा खोजता
तूफ़ान में भटका उजाला।

प्रीति किये दुख होय

हर घड़ी का साथ
इतने पास
फिर भी दूर इतने
मिल न पाऊँ
कह न पाऊँ
प्रेम की यह व्यथा मुझ को
मथ रही है
दल रही है,
भाग्य मुझ को छल गया है
खिंची लक्ष्मण-रेख ऐसी
इस जनम में
लाँघना जिस का कठिन है;
इस तरह बुझते-बुझाते
कौन जाने
हृदय कब विद्रोह कर दे
तोड़ दे इन बन्धनों को
एक निर्मम चोट से
कर दूँ स्वयं ही
प्रेम के टुकड़े
मगर क्या कर सकूँगा ?

प्यार अद्भुत !
किसी क्षण भी आ धमकता
बिन बुलाया
दर्द देने

बन बिजुरिया
कौंध कर
है राख करता
चित्र अनगिनती
निजी जो मन रचे था;
असम्भव है शक्ति कोई

स्वर्ग में भी प्रेम-रहित !

मुक्ति रूपा
पीर हर ले
उस हृदय की
वेदना के ताप से झुलसे निरन्तर
सिसकता हो यातना से
तड़पतो ज्यों मीन जल बिन;
घाव भरता है समय
माना
मगर है छोड़ जाता
कहीं अन्दर गुनगुनाते
दर्द के दाग़ी सुरों को
तब तलक
जब फिर महकते साज़ छिड़ते
दर्द के ताज़े सुरों में

दर्द होगा
कसक होगी
जान कर भी पान करते
प्रेम की यह सुरा कैसी ?
छटपटाती रात की काली सियाही
यन्त्रणा पीड़ित दिनों की दास्तानें
दैनिकी का वेश धारे
थका देती हैं हृदय को
नहीं सम्भव टाल दें हम ?—
इक तड़ित्-चालक लगा कर

बन्द कर दें मुख हृदय का
रोक दें यह गरल पीना
प्रेम-शर भय से सुरक्षित ?
सोचता हूँ
हो सकेगा
नहीं किंतु चल सकेगा
स्थायी बन कर
और यदि अवतरण कर ले
प्रेम देवी—
विपद कैसी,

साक्षात्कार

कान्तिमान् मुखमण्डल
प्रभा अपरिचित झलके
माथे लिपटा
सर्पराज का कँगना खनके
त्रिशूलधारी

अन्तर्धान हुए गौरीपति
ग्वाला आया
साँवलिया
पीताम्बर पहने
हरित मुरली की तान छेड़ता
हृदय चुराता
मन भरमाता

रूप बदल
प्रत्यक्ष एक नारी
ज्वाला-सी आंखों में भर
मुण्डमाल से सजी-सजायी
दौड़ी आयी
हाथ उठाये
अभय बाँटती
शीश काटती
खप्पर वाली

प्रकट हुआ तब
एक वृक्ष की छाया में केसरिया योगी

नयन-कमल-मुकुलित
मन्द स्मित
क्रोध, असूया, भय, निन्दा को
लुटा-बहा
आशीर्वाद देता मानव को
और अन्त में
करुण-भंगिमा
नीलनयन-द्वय-काया प्रगटी
उस सागर से
दिया गया था जहाँ मुक्ति-वर
मानवता को
और वहीं पर पीड़ा झेली
क्रॉस उठाया

रवि हज़ारों साथ चमके
सिमट खोयीं पाँच छवियाँ
शून्य की गहराइयों,
ऊँचाइयों में
उड़ी मानवता
अनन्ती मंज़िलों को

बाग़ में सागर किनारे

धुन पुरानी आज लेती है हिलोरें
फिर भला क्यों ?
गीत जो गाये गये थे
बाग़ में सागर किनारे
डाल गलबहियाँ जहाँ पर
झूलती थीं प्राण ! तुम मेरे सहारे
और हम ने प्यार के वादे किये थे
जिस विजन में
आज फिर पहुँचा वहीं मैं
खटखटाता द्वार यादों के

कस रहा था हाथ हाथों में लिये मैं
पढ़ रहा था नील नयनों की अबोली प्रेम भाषा
गाल गालों से सटाये
गढ़ रहा था मधुर सपने
बाहुओं में भर तुम्हारी उठन मादक
गिन रहा था धड़कनों को
उस दिवस उल्लास क्षण में
प्यार में उन्मत्त हो कर
बाग़ में सागर किनारे
याद उस दिन की कसैली गुदगुदाती

मधुर तो
पर सालती है
धुन पुरानी
विदा की वह करुण बेला

बाग़ में सागर किनारे
जहाँ बिछुड़े
भावनाएँ वायवी हम छोड़ आये
नहीं सम्भव भूल जायें—
अलविदा के गीत
जो गाये गये थे
चुंबनों में रस भिगोये
बाग़ में सागर किनारे !

अन्त ही अन्त है

दूर–पास
घूमे अगम प्रदेश कई
ऊँचे-ऊँचे
दुर्जेय पर्वत लाँघे
देखे कितने ही
विस्मय भरे दृश्य
भीति से उठे नहीं
मानव-चरण जिधर
निर्भय निश्शंक हो आया
वहाँ भी मैं

उद्वेलित महासागर
पछाड़ें खाता
विस्तार जल का
खेलतीं खुल कर
मछलियाँ दैत्याकार
थका नहीं वहाँ भी
नौका खेता मैं
चलायी पतवार
लहर-लहर पर

विचरा घने-घने
पुरातन जंगलों में
जुआ खींचा
अकेले जीवन का

छोटे, कुछ भीमकाय
जानवर काटता
मैं अँधेरे से घबराया नहीं
वहाँ भी
बिना रुके
जूझता ही रहा
विजय यात्राओं को
गूँजते जय-जयकार, और
शक्ति की हर परीक्षा को
मैं ने समझा
कष्टों का अन्त
भय
पीड़ा
जरा
और मरण
से अविलम्ब मुक्ति

होता रहा किन्तु मेरी
प्रत्येक आशा पर
निरन्तर तुषारपात
और वे सड़ती रहीं
क्योंकि मैं
भटक नहीं पाया
किसी एक निभृत कोने में अन्तर के
कुण्डली मार कर बैठे संत्रास को
जो निरपेक्ष है
मेरे व्यापक भ्रमण
और साहसिक यात्राओं से

हर समय
मृत्यु मँडराती है
हमारी आशाओं

और
अर्जित धन-वैभव पर
झरझर
समय के पतझर में
वीरों की स्मृतियाँ
मद्धिम होतीं
बिखर जातीं
श्रम-वैभव की उपलब्धियाँ

क्या रहेगा
हमारे साथ
जो शेष रहा
मृत्यु के सर्वनाशी ग्रास से
कन्धा कौन देगा
बन्द होंगे जब
श्वासों के नश्वर स्वर
और होंगे बजाने
अनिश्चित राग
अनन्त की पालकी में

रंग रास

अनन्त की रंगीन जाली से
तानी का
एक महीन तार टूटा
इक क्षण जन्मा;
निगाहों ने बरबस उसे जा पकड़ा
मुसकरायीं
लाल डोरे खिंच आये;
अचेतन की क्यारी में
अनायास ही फूटा
विचार का एक अंकुर;
अदृश्य के हाथों ने
निर्दयता से
निकाल कर फेंक दिया
हृदय में धँसा हुआ
काँटा प्रेम का;
निराशा में—
अँधियारी गुफा में—
आशा का जुगनू चमका;
ज्योति की किरण एक
चारों ओर खोजती रही
अपना उज्ज्वल निलय।

डूबता मन

सकल विश्व तम बीच खो गया
आशा आज अनाथ हो गयी
कहीं डूबता मन का धीवर
चीख़ रहा है रात हो गयी
चिर निद्रा में लीन होऊँ क्या ?

विश्वासों का अमरकूप है ख़ाली-ख़ाली
तन-मन, सुध-बुध, निर्वासित पाताल-लोक में
कारागृह में बन्द ज्योति से रहित आत्मा
जीवन है निस्सार, जान कर भी मैं जग में
चिर निद्रा में लीन होऊँ क्या ?

राह-ठौर सब रुकी पड़ी हैं
जीव-कोष सब जले-भुने-से
प्रेत मूर्तियाँ इंगित करतीं
छूट चला तन के चक्कर से
चिर निद्रा में लीन होऊँ क्या ?

महाज्ञान

मचल गया
उस दिन था सूरज
अस्ताचल पर
घूंघट के पट
उलट-पलट कर
लगा देखने
दुल्हिन साँझ गुलाबी कितनी
उसी समय आ कर अनजाने
कहा किसी ने
चुपके से मेरे कानों में
सुनो, वत्स !
यह समय स्वर्ण-मृग
नहीं पकड़ पाये रघुनन्दन
यह जीवन कड़वा-मीठा है
आशा और दुराशा से
क्षण-क्षण आलोडित
समय पकड़ लूँ, जीवन भोगूँ
कैसा यह संग्राम विलक्षण ?
आज नहीं तो कल पा लूँगा
कैसा व्यर्थ अपेक्षा-पालन ?
संघर्षों की कठिन डगर हम
रक्त होम, सामर्थ्य लुटाते
श्वास-बीन की असफलता पर
कालदेव को अर्घ्य चढ़ाते
व्यर्थ, व्यर्थ यह बृहद् शून्य है !

बैठ रहा मैं जड़वत् हो कर
निजी धड़कनों को गिनता-सा
उन की करतल ध्वनि सुनता-सा
उसी घड़ी प्रत्युत्तर गूँजा
महाज्ञान-सा जीवन-दर्शन
समाधान थी मृदुला वाणी
"नहीं, वत्स !
यह नहीं सत्य है
जीवन की अविराम यात्रा
घोर थकानें
नहीं सदा ही
मृत्यु और उत्पीड़न देतीं
यही नहीं अनिवार्य अन्त है,
ब्रह्मज्ञानियों ने खोजा है
ऋषि-मुनियों का धाम सुनहरा
मर्त्य-लोक से उठने वाला
काम त्याग कर मिलने वाला
एक और पथ रंग-बिरंगा
इन्द्रधनुष का सेतु चरम है
वही पूर्ण है, अमर तेज है
वही, वही अनिवार्य अन्त है ।"

सेमिनार

विद्वान् क़तारों में सजे
जैसे सोडे की बोतलें
प्रतीक्षा करती हों
हलक में उतरने की,
एक के बाद एक
माइक तक पहुँचते हैं
डगमगाती चाल से
व्यक्तिगत द्वेषों को
तर्क का सहारा ले कर
बहाने से उगलते हैं;
एक
मोटे, भद्दे, नाटे श्रीमान्
ख़ूब लकदक
बात-बात पर उछलते हैं
नक़ल करते हैं
पैन्डुलम की;
दूसरे
प्रभावपूर्ण गाम्भीर्य के धनी
स्थापित हैं
प्रस्तर प्रतिमा की तरह
जिस पर जीवित होंठ चस्पा कर दिये गये हों;
एक और
बाज़-सी पैनी दृष्टि
बढ़ी दाढ़ी
नीरस चेहरा लटकाये

शब्दों के बड़े-बड़े बोझ
पटक कर
श्रोताओं को लहूलुहान किये दे रहे हैं;
यूँ ही बेसुरा, बेमज़ा
कार्यक्रम चलता है
डूब जाता है सारा हाल
शब्दों की बाढ़ में
और चल पड़ते हैं
महापुरुष
शब्दों के अपव्यय से रिक्त
स्थान-पूर्ति को
लंच के लिए।

सम्मेलन

अनुभवी
लगभग घिसटते चलते हैं
पके बालों वाले
गंजे भी
फ़ाइलों, ब्रीफ़केसों और सहायकों से सज्जित;
कैमरे किलकते हैं
दृश्य फ़िल्माये जाते हैं
'यह भी', 'यह भी',
'और यह तो रह ही गया'—
सर्वव्यापी चिन्ता का वातावरण;
ढेर के ढेर आँकड़े
कभी मेज़ों पर
कभी नीचे
चढ़ते
उतरते हैं
घंटों पर घंटे
बीतते हैं !

चाय

‘आइए, एक प्याला चाय हो जाये’
मीटिंग की एकरसता कुछ तो टूटे
मैं ने प्रस्ताव किया;
‘हम आठ और एक प्याला ?’
तीर छोड़ा एक हाज़िरजवाब ने;
आया भाप छोड़ता सुनहरा पेय
‘कितनी लेंगे ?’ ‘कितनी लेंगे ?’
शिष्टाचार दुहराया गया
भरे गये प्याले चमचमाते हुए
और बँट गये
एक से दूसरे को
दूसरे से तीसरे को
सभी को
घुलती चीनी और मिलता दूध
चाय कुछ घबरायी सहमी-सी
चुस्कियों की आवाज़ें
चलो, इतनी ही सही
शान्ति कुछ तो मिली
शब्दों के मरुस्थल में हरियाली के वरदान-सी

वह दिन

उस दिन भी
धूप निकली थी
अम्बर नील गहराइयों में खोया था
हरी दूब बैंजनिया रँगी गयी थी
और मैं तुम्हारे प्रेम-पास में जकड़ा गया था

उस दिन भी
मेघदूत सफ़ेद-सलेटी परिधान पहने थे
समुद्र बेचैन था
कहीं किसी कोयल ने पुकारा था
और तुम मुझे समर्पण कर बैठी थीं ।

प्रश्नोत्तर

दिनमान क्या गीत सुनाये ?
कली निखर कर मुरझा जाये;
शिथिल फूल क्यों भरी दुपहरी ?
सुन्दरता तो आँधी ठहरी;
मन्द समीरण क्या कहती है ?
मानव मन नदिया बहती है;
इन्द्रधनुष क्यों मुसकाता है ?
धरा-गगन संगम गाता है;
चन्द्रवृत्त क्यों घटता रहता ?
अन्त झरे जो चलता बहता;
सूर्य अग्नि क्यों वितरित करता ?
क्षत-विक्षत तन हृदय दहकता;
कवि क्यों मन की बात बताता ?
क्योंकि अन्य वह मार्ग न पाता ।

निशा-तरु

रात की काली चुनरिया फहराती
बयार
पत्तियों के साथ युगल गीत गाती
मन-प्राण सींचती
बहार
पेड़ समाधि खोलते हैं

हर्षातिरेक से डोलती
शाखें
चाँदनी : चोर-सिपाही खेलती
शबनमी धरती बिछाती
आँखें
प्रकाश-फुलझड़ियाँ सजती हैं

विरही होठों में बजती
बाँसुरी
हर कोने पेड़ों में जा पसरती
वर पाये ज्यों गाये कोई
ठुमरी
जीवन-भर का मूक सिहरता है

पूर्व-नियोजित पथ पर संचालित
अविचलित
सौर मण्डल निरन्तर घूमता
अन्तरिक्ष में रात-भर गायन
चित्रलिखित

पेड़ चकित सुनते हैं

आकाश-गीत की मदमाती
अदाएँ
स्रष्टा का हृदय धड़कता
प्रकृति की थिरकती
सदाएँ
कजरारे आँचल छुपे पेड़ निरखते हैं ।

पवन

पवन
न दिखे वह पथिक
बतियाता ही जाये वह रसिक
अनिश्चित राहों का राही
गीत गाता चिरनूतन

चुलबुलाहट
कभी धीमी—चुप्पी
कभी तूफ़ान—घनघोर
पृथ्वी : पददलित,
पीड़ित, आतंकित

बयार
सुखदायी धीरे बहे
पुष्प-गन्ध उड़ती हुई
चोरी-चोरी घुसे जा कर निभृत कुंजों में
युवा-प्रेमी मिलें जहाँ

चित्रकारी
सोई झील पर रेखांकन
शान्त चेहरे पर उमंगें
अछूती आकृतियों का लचीलापन
बनने-बिगड़ने का अनोखा सिलसिला

सीटियाँ
हवा लटके कछारों पर
मेहमान का आगमन : शोर : अभिनन्दन

झाड़-घास झुकी-झुकी
गाँव-शहर अवाक् लखें : आकाशभ्रमण

सुखद
ठंडी हवा का ताज़ा झोंका
भवनों में, मैली-कुचैली गलियों में
उदास-उखड़े नगरवासी
पुलकित हैं आशा की किरण देख

तूफ़ानी रात

पर्व है
काली घटाओं का जमाव हुआ
मेघ-गर्जना—नगाड़ा बज रहा है
घटाटोप अँधेरा छाया
आसमान का विशाल तन-बदन टूट रहा है
चपला के नाग-पाश—जकड़ में
बादलों की सिलाई उधड़ रही है
मूसलाधार बारिश : धुँधलके में
नदी-नालों से टकरायी, लो टकरायी है

पर्व है
पवन चंचल पागल हुआ
आसुरी कलाबाज़ियाँ—चीख़ रहा है
वर्षा का चाबुक सड़सड़ उछालता
भयभीत गाँव गिड़गिड़ा रहा है
बिजली के प्रचण्ड धड़ाके
नारकीय विप्लव—नगाड़ा बज रहा है
घन-गर्जन, नील चमक
आकाश पर चँदवा तना, लो तना है
तूफ़ानी रात में ओलों का शोर

डिपार्टमेंट स्टोर

मानव-चरणों का क़ाफ़िला
बढ़ता जाता है
काउंटर छूने को
लालायित-सा;
मिली-जुली आवाज़ें
कुछ तेज़
कुछ मद्धिम
चक्कर काटती हैं,
आलमारियों में बन्द
आधुनिक जीवन की बहुलताएँ
इशारों से पास बुलाती हैं;
आह,
मैं थक गया हूँ
कितना सुखदायी है
बैठ कर
संतरे का शर्बत पीना
शीतल सुगन्ध भीतर उँड़ेलना
मधुमक्खियों की उन्मत्त भिनभिन सुनना;
अभी फिर उठना होगा
मिलने को
फँसने को
भँवर में
मानव-चरणों के क़ाफ़िले में
जो बढ़ता जाता है
काउंटर छूने को
लालायित-सा !

सागर

तरंगें : उठानें, गिरानें
उदधि की
महकते तराने
उमड़ गा रहे हैं
घुमड़ एक हो
चाँद को दूर से
कर रहे हैं इशारे
प्रदर्शित करेंगे चमत्कार बढ़िया
पलायन करेंगे धरा की कसन से
यह कैसा भुलावा ?

जलांचल यह हिलता
छुपाये हैं जलचर
भयानक सुहाने
अनेकों विचरते
तरल बन्दीगृह में
कहानी यहीं
आदि को, अन्त की भी;
युगों से पुराने
समय-चक्र की
ये अँधेरी गुफाएँ
बढ़ा वर्तुलाकार गति जा रहा है
सिसकता-सा सागर
झटक सिर रहा है
ताण्डव की धुन में
प्रलय का दीवाना।

शिशिर ऋतु

चाँदी से हिमशिखर
नीचे भेज रहे हैं
सनसनाती हवाएँ
वादी में दौड़ी है
दुराग्रही शीत लहर
चेतन मन, अन्तरतम सिकुड़े हैं
प्रहरी सुन्न अँगुलियाँ, चटकती हड्डियाँ
जमे-से खड़े;
सब नीरव है
अनहोनी के पूर्वाभास-सा
कहीं दूर—
पहाड़ियों पर बिजली चमकी है
वादी भी अब निशाना बनेगी
वज्र प्रहार का
झोपड़ियों और खेतों की चुप्पी टूटेगी;
यदि सूर्योदय हो
लायेगा—सन्देशा नवजीवन का
ठिठुराती बर्फ़ भागेगी
ऊँघती वादी जागेगी
जमी बाँहें शक्ति पुकारेंगी
उदास हृदय झूमेंगे
प्रतीक्षारत बुझी-बुझी आँखें चमकेंगी
गर्म-गर्म जाड़ा कैसा मनभावना होता ?

अमर ज्योति

बुलबुले—रंग-बिरंगे बुलबुले,
अनगिनती बुलबुले—
पतंगों की मानिंद
डोर के पेंच छुड़ा कर
आकाश में उड़ते हैं
ऊँचे—और ऊँचे—उस से भी ऊँचे
समय की पहुँच से परे
जहाँ हमारे गर्व का खोखलापन बौखला जाये,
धूल के एक नन्हें कण में सिमटा
मानवीय वैभव परिक्रमा करे
ब्रह्माण्ड-केन्द्र सूर्य की
और मसखरी लगने लगें
हमारी प्रेम और वासना की कहानियाँ
स्वप्नों के पूरे-अधूरे कारनामे;
पर
मानव-हृदय आवास है
दैवी चिनगारी का भी
मन्दिर है
साक्षात् अमर ज्योति का भी
जिसे आज या कल
पूर्ण ब्रह्म में
समाये बिना सन्तोष नहीं
तभी उड़ी चलती है
तेज से मिलने
हम में की वही अमर ज्योति

जहाँ देदीप्यमान, स्वर्णिम दिवस
चाँदनी रात से
अभिसार करता है !

मिलानों में

(अभी-अभी
लौटा हूँ
मिलानों के बड़े गिरजे से
पैरों पड़ी सड़कें रौंद कर)
पटरियों पर ठाठें मारता जन-समुद्र
बारिश की मार झेलती बरसातियाँ
रिसती छतरियों का ताँता
उफान अलबेला था;
यातायात का भड़कता रव
चीख़-पुकार
आसमान सिर पर उठाये था;
आधुनिकी—
तड़क-भड़क
दीमक
जीवन चाटे थी;
मुझे फफोले नहीं पड़े
इस अनियन्त्रित उबाल में भी
मैं चढ़ गया सोपान
दिव्य शान्ति के
जो निहित थी
यीसू के उस पावन गिरजे में
पत्थर के नवल क्षितिज में
जहाँ उदासीन निर्निमेष देखे था
सांसारिक हलचल को;
गुंबज

मिलन की आशा लिये
निस्सीम गगन
चूमने चढ़े थे,
पवित्रात्माएँ
मासूम भीड़ पर
आशीर्वाद बरसाये थीं;
और अज्ञानी वे
गति की चकाचौंध में सूरदास बने
त्रसित
वरदान त्याग भागे थे।

चलचित्र

प्रकाश और ध्वनि—
अद्‌भुत सम्मिश्रण.......
बदलती-मात्राएँ
शुभ्र चादर पर
चित्र रूपा
अवतरित होती हैं
हर पल
मुखरती-मिटती,
सजीव-सप्राण लगती हैं
दर्शकों की पंक्तियों को—
एकटक आँखों को
ख़ूबसूरत धोखा हैं;
पट पर उतरती-खिसकती आकृतियाँ—
वेदना के बजते तार,
नैराश्य सागर में हिचकोले खाता
टूटा प्रेम,
अन्तर की अतल ग्रन्थियाँ,
प्रकाशजन्य घुमाव,
भावों, अर्थों का सूक्ष्म-सा अन्तर,
श्वासों का टकराव-ठहराव,
उमड़ता जलधि आवेग का;
चलचित्र
मृग-मरीचिका ही
पर सत्य की प्रतीति हैं
अस्तित्व का बोध हैं;
पराकाष्ठा : "अन्त"

वह अकेली साँझ

हँसी थी, संगीत तिरता
नाचते मदमस्त जोड़े
शबनमी अंदाज़ में थिरकीं
निगाहें प्रीत ओढ़े
वह वहीं था
मन नहीं था
वह नहीं थी····

मुस्कराहट बहुत बाँटी
छेड़ से सब को भिगोया
हृदय ख़ाली धुँएँ जैसा
बिखर तब भी ख़ूब रोया
किधर ? कहाँ ?
कहीं नहीं
घिर गयी घायल उदासी····

नृत्य की गति थाप बहकी
क्षिप्र पारद पाँव चहके
धुन रँगीली हार मानी
हृदय-बगिया नहीं लहके
समझाया
बहलाया
बढ़ी चुभन और ही····

खुल गयी ध्वनि, ज़ोर भागी
चरम बढ़ता आन पहुँचा
झूमते जोड़े पिघल कर
सट गये, उन्मुक्त पहुँचा
उफनता-सा ज्वार
वसन्त बहार
मिल गयी वह····

सलीबों का क्रन्दन

कभी-कभी—
तुम न मिल पायीं
छितर कर भागते तूफ़ान कितने
मसकते अरमान कितने
मन लपेटे ले रहे हैं
प्यास की अनबुझ उमस में
खोदते क़ब्रें
पुरानी यादगारें—दिन मिटे जो
सलीबें जिन पर गड़ी हैं धड़कती रंगीन रातें
आज भी क्रन्दन सुनाई दे रहा है
गीत जितने दबे उन में
कांपती जितनी आवाज़ें
दृश्य जितने;
तरस जायें नयन
प्रिय !
तुम नहीं आओ
स्वर न आये
पर हवा में गमक उड़ती है तुम्हारी
प्रेम की पागल फुहारें फिर पड़ेंगी
वेग ले कर बाढ़ का
औ' हिल उठेंगी स्वर्ग की नींवें
चुनौती भुवन को ही
ब्रह्म की सर्वोच्च रचना।

जलपरी

छलछल नीरधि
खौल रहा-सा
धड़क रहा
कुछ बोल रहा-सा
ऊपर उड़ती एक चिरैया
हवा बनी है जिस की नैया
मन ही मन में हँसती बोले
"चाहे जितनी रार मचा ले
मेरी क्या कर लेगा हेठी
मैं हूँ पवनपुत्र की बेटी";
निर्भय उड़ती धवल परी वह
नहीं जानती शायद
गहरा सागर तल है
जल निर्मल है
पर दलदल है
निगल सकेगा
दानव ऐसा;
निखिल ज्योत्सना
अल्हड़ यौवन
उर्वशी पंख लगाये झूमे
रूप-गर्विता
लहरों को छू कर
चूमे भी
दूर हटा दे;
दीप जल रहे
आँखों के दो

बाल सुलभ मासूम कल्पना
कैनवस : तट पर लोट लगाती
पाँव धुलाती
बड़ी लहर का
खड़ी लहर का
क्षणिक जूझता अटल अचल से ।

एक बात मानो !

करो अपनी ही
जैसा जी चाहे
पर
मेरी ओर
यूँ न देखो
ठेस लगती है—
पीर इतनी न होती
तुम्हारी आँखों में सोया तीखापन
बार-बार अँगड़ाइयाँ न लेता तो
या फिर
तुम्हारी आँखों पर छायी
ये काली लकीरें
कुछ छोटी होतीं

आशा

पीड़ा—अंग-अंग बसी पीड़ा—
मन में सुलगते अंगारों से उठता धुआँ
निकलती चीखें
अणुबम से ध्वस्त हिरोशिमा-जैसी,
साँसें अभी भी चलती हैं
आशा की—
चेतनादायी प्रवाह चलाता है
संवेग के महीन धागों को;
धारा सूख जाये तो
मैं अँधेरे की मोटी तहों में दब जाऊँ
इच्छा-नौकाएँ जला राख कर डालूँ
सदा-सर्वदा के लिए
पर आशा जाने की नहीं
चिपकी है बुरी तरह
भावुक रस निचोड़ ले सारा
मन का
और हम थके-हारे गिर पड़ें
कभी न जुड़ने के लिए
नदी के दो समानान्तर किनारे

चोरी-चोरी

"तुम सुन्दर हो, बहुत सुन्दर !"
"तुम्हारे अपने ही रूप की स्निग्धता है, प्रिये !"
"तुम्हारी गहरी काली आँखों में मुझे कौन बुला रहा है ?"
"तुम्हारी अपनी ही परछाइयाँ हैं, प्रिये !"
"तुम्हारी मदिर दृष्टि का सम्मोहन मेरे अंग-अंग में बसा
जा रहा है !"
"तुम्हारे अपने ही चुम्बन से झरती बरसात का आनन्द है,
प्रिये !"
"तुम्हारी ये बाँहें कितनी शक्तिशाली हैं ?"
"तुम्हें आलिंगन में बाँध सार्थक होती हैं, प्रिये !"
"तुम्हें मुझ से इतनी प्रीत क्यों है ?"
"प्रीत रीत नहीं जाना करती, प्रियतमे !"

तलाश

मुझे अपना मीत मिल गया था
अन्तर के गह्वर में पड़ा
सोचा—झंकार हुई
क्षण का कोई एक भाग चमक उठा
अलसायी आशा जागी
आँखें मलती;
मेरे सोने के कमरे में
जबरन घुस आयी
प्रकाश-किरणों का स्वर्णजाल—
हर्षोन्माद में आँख-मिचौली खेलते
धूल के कण,
घास पर मनोरम नक़्क़ाशी
मन्द बयार की अँगुलियों द्वारा,
तट के चरण पखारती
समुद्र की उत्ताल तरंगें,
ये सब उसी के तो स्वरूप हैं
मुझे लगा;
समय की ऊँची लहरों में झांक
कुछ आँकता-सा
भाग्य करघे के निरीक्षण में
प्रतीक्षारत-सा
मुझे वह मिला;
पर वह किसे ढूंढ़ रहा था ?—
जीवन का नया स्पन्दन,
उपलब्धि का पुरस्कार
माथे पर ढल आये स्वेद बिन्दु,

राधा की अन्तर्वेदना

अकेली री !
पसारे पाँव मन में टीस हूके
माँग मन की कब तलक रीती रहेगी ?
बाट तकती थक गयी मैं
नहीं आये श्याम
भीगे नयन मेरे
हृदय गीला;
सुन रही केवल कराहें
पेड़ निर्मोही पवन को दे रहे जो
गगन तारे मुसकराते
टिमटिमाते
जान न पहचान
जैसे कह रहे हों
"पगली राधा !
रैन सारी व्यर्थ जागी;"
अन्त हो उत्सुक घुटन का
विरह-पथ में मोड़ आये
सोचती मैं ठिठक जाती
दूर की आवाज़ सुन कर :
"पूर्ण कर दूँ तुम्हें, राधे !
समय से ऊपर उठा दूँ,
चली आओ इस बिराने,"
कान्ह ही मुझ को बुलाते
और मैं बैठी यहाँ पर
पाँव चल पड़ते स्वयं

मैं भी ठगी-सी
हिया व्याकुल;
नहीं आये श्याम
सखी री !
किस लिए मुझ को थकाते ?
स्वार्थ का हर मोह झूठा टूट जाये
आवरण झीने अहं के उतर जायें
और मैं असहाय हो कर
डाल दूँ बाँहें गले में श्याम की
जो है चिरन्तन सत्य
नभ का तेज : तिमिरारि
प्रखरता बांटता है
वह अनादि

प्राण का निर्माणकर्ता ।

–

चाँदनी रात

झरझर बरसी चाँदनी : बजते घुँघरू
शान्त शीतल लोरी : उड़ते पखेरू
बात उनींदी पलकों वाली रात की !

एक दूजे में गुमसुम : प्रेमी धड़कनें
आशा की कँपकँपाती लौ थामे
जगमग, धूप-छाँह, सौन्दर्य-भूलभुलैया में
घनीभूत आश्चर्य से खोयी
चेतना की बेसुध गोरी तलाश रही हैं;

चन्दा का तेज़ वृत्त
और तारों की फीकी मुसकानें
दूर—बहुत दूर
सोंधी ख़ुशबू से सराबोर : दो दिल
मिलन-जनित आनन्द से
आँख मिचौनी खेल रहे हैं
सृष्टि रसमय हो गयी है !

जैट-युद्धक

व्योमचर
दाँव-पेंच बदल
मान-मर्दन
गर्व-खण्डन करते
शत्रु का
भरते हैं नाद पुरातन,
पैंतरा बदल कर
व्यूह चक्राकार चलें
रवि रश्मियाँ
सकुचाती—स्पर्श करें
कतराती—भाग चलें
कोण विषम खिंचे जायें,
चमकीले पंख लिये
छोटी-छोटी चिड़ियों-से
द्रुतगति उड़ते हैं
ध्वनि पीछा करती है
पलक झपकते
मँडराते नज़रों में
नज़रों से ओझल भी
डोलें ज्यों पारद हो
अनुशासित-शर-संधानित,
चालक चिपके रहते
कँपते निर्देशों से
हर सूई पढ़ती है
जीवन विस्तृत जितना

मृत्यु जिस छोर डटी
हर झटका निर्णय है
अम्बर के अमर महल
भूतल के निलयन में
जब उतरें आन मिलें।

स्वप्न

सपनों के फूल मुझ पर बरसे—
आकाश मार्ग से स्वर्ण मण्डित सिंहासन उतरा
मैं आसीन हुआ
उड़ चला देवों की जादूनगरी की ओर
खोया-खोया
न जाने कब अधर में लटक गया
दिशाएँ इन्द्रधनुषी कवच पहने रक्षा करने लगीं
और मैं ने देखा :
अवर्णनीय—अनिर्वचनीय—
अधजगी दुनिया
नीलिमा सुरभित
थिरकती-डोलती,
सुन्दर रंगोली
महाद्वीपों-महासागरों से
सजती-बिछती;
चन्द्रमा हलका गुलाबी रंग हाथों मले
होली खेलने पीछे-पीछे
धरा आगे-आगे
नियत पथ पर
बचती-भागती,
सूर्य
अग्नि-बाण चलाता
प्रकाश-किरणें बिखेरता,
ग्रह
गुनगुनाते

कक्षाओं में भागते;
आँखें मूँद ली मैं ने
अभिभूत-सा ठगा रह गया मैं।

शोक गीत

(श्री जवाहरलाल नेहरू के निधन पर)

मृत्युंजय !
कीर्ति ने हाथ बढ़ा कर
खिले गुलाब को
खोंस लिया है
उसी वेणी में महकने
जिस में पहले भी
अनेकों फूल पिरोये गये थे;

तपस्वी !
विदेशी दासता से बँधी
भारत-माँ को
कड़ियों से मुक्ति दिलाने
तुम भगीरथ बने
ज्योतिर्यज्ञ रचाया
दुख-दर्द का झूला झूले;

कर्मवीर !
तुम ने जीवन-भर युद्ध किया
स्वतन्त्रता की धूमिल प्रभाती सजायी
पर रुके नहीं
वरन् रात-दिन
कल्याणी श्रम-साधना में;

प्रतापी !
तुम इतिहास बने
तो क्या ?
हम शेष हैं
तुम्हारी यादें शेष हैं
दीप से दीप जलेगा
सपने साकार होंगे

तमोगुण

मूर्छित आत्मा : किंकर्तव्यविमूढ़
आलस्य की निद्रा सोयी इन्द्रियाँ
निस्पन्द, ज्ञानशून्य—
अस्तित्व का भारी बोझ
माया की विपुलताओं में
कछुए की गति से
बेमन, अर्थहीन
खिचता है
मन्द–क्षीण स्वरों की सरगम;
बोझिल जीवन
एक प्रश्नचिन्ह
चुकी सामर्थ्य
थका मानव
समय के थपेड़े सहते
लड़खड़ाते चरण सँभालता है
कौन आशा बुलाती है
कौन ध्येय पुचकारता है ?
कोई उत्तर नहीं;
गिरते-पड़ते
बढ़ता है
अनन्त यात्रा में
जीना अनिवार्य है
चलना तो है
उद्देश्य का क्या
परिभाषा-रहित ही सही
"गुणों में निम्न कोटि तामस यही।"

राजस

आत्मा समाया
अपूर्व आलोक
फैलता किरण-पुंज
मस्तिष्क झनझनाने
प्रेरणा की झरी बना
कर्म का सन्देश;
कल्पना-पायल की छुनछुन…
युद्ध की विभीषिका
जय-पराजय
पराक्रमी असिधारें : टपकता लहू
मृत्युदूत तोपें : निरन्तर गड़गड़
घायलों की हृदयभेदी चीखें
विधवाओं का दारुण विलाप,
नींवें
गगनचुम्बी अट्टालिकाओं की
आँसुओं-कराहों से निर्मित;
शिराएँ धड़कतीं
भय
क्रोध
आशा
आह्लाद
मिली-जुली धुन पर,
आदेश सुनो
बेसुध कर्म किये जाओ
ऊँचा छुओ
ऊँचा गिरो;

अतृप्त आत्मा
किये-अनकिये चक्कर घूमती
परिवर्तनशील झाग उगलते
फेनिल समुद्र में
लहरें चढ़ी जीवन की नाव
खोने को तैयार
उस पार
"गुणों में मध्यम राजस यही ।"

सत्त्व

राग
नहीं, विराग
फुदकती कठपुतली—
संवेग के महीन धागों की,
वासना से उपजा सौन्दर्य
घृणा से उगा प्रेम,
क्रोध से उदित ज्ञान,
स्थिर मनःताल
झरोखे से समूची सृष्टि
विहंगम दृष्टि,
हृदय गमले लगा समभाव
संसारी माटी में अडिग
संतुलित पतली जड़ों पर;
अचेत इन्द्रियाँ
नहीं, चैतन्य
कटी-फटी-शमित नहीं,
सुडौल-सुघड़ ढली;
मानस : ज्योति कलश
सर्वेक्षण बहुरंगी जीवन का
अनमोल तपा कुन्दन जो
अन्तर्दृष्टि की अग्नि में
पहने गजरा
सहज सुलभ गौरव का
गुणों का सिरमौर सत्त्व यही।

वरदायी ज्वलन्त

ज्वलन्त : असम्भव चित्रण
मन की गलियाँ
ऊँची-नीची नहीं
गोरे-चिट्टे संगमरमर-सी चिकनी
झूलती हैं
शक्ति-प्रेषित-कम्पनों से,
घन गर्जन
फिसलती है उतावली में
शब्दों की तूलिका;
पुनर्मिलन
दैवी स्फुलिंगों का,
सनसनी
हवा में तैरते मुक्त हास्य की,
निनाद
शून्य में गूँजता,
धूल-धूसरित
समय का टूटा खिलौना;
स्वर्ग फीका है,
मृत्यु की काली छाया
प्रवेश को अनुमति नहीं
हस्तक्षेप-वंचिता,
जीवन
प्रदोप्त आनन्द
वरदान समाहित।

वरदायी ज्वलन्त

ज्वलन्त : असम्भव चित्रण
मन की गलियाँ
ऊँची-नीची नहीं
गोरे-चिट्टे संगमरमर-सी चिकनी
झूलती हैं
शक्ति-प्रेषित-कम्पनों से,
घन गर्जन
फिसलती है उतावली में
शब्दों की तूलिका;
पुनर्मिलन
दैवी स्फुलिंगों का,
सनसनी
हवा में तैरते मुक्त हास्य की,
निनाद
शून्य में गूँजता,
धूल-धूसरित
समय का टूटा खिलौना;
स्वर्ग फीका है,
मृत्यु की काली छाया
प्रवेश को अनुमति नहीं
हस्तक्षेप-वंचिता,
जीवन
प्रदीप्त आनन्द
वरदान समाहित।



डॉ० कर्णसिंह : एम० ए, पी·एच० डी०

अँगरेज़ी तथा डोगरी भाषाओं के प्रतिभाशाली लेखक कवि, भारतीय तथा विदेशी साहित्यों के विवेकी अध्येता।

जन्म : १९३१ कान्स, फ्रान्स; मातृभाषा : डोगरी; अन्य भाषाएँ : हिन्दी, उर्दू, पंजाबी, अँगरेज़ी, फ्रेंच।

रीजेण्ट, जम्मू तथा कश्मीर (१९४९-५२); सदर-ए-रियासत (१९५२-५७, १९५७-६२, १९६२-६५); राज्यपाल, जम्मू तथा कश्मीर (१९६५-६७); मार्च १९६७ से केन्द्रीय मन्त्रिमण्डल में मन्त्री, पर्यटन तथा नागर विमानन; आजीवन न्यासधारी तथा मन्त्री, जवाहर लाल नेहरू स्मारक निधि; अध्यक्ष, भारतीय वन्यजीव बोर्ड, अध्यक्ष, श्रीअरविन्द शतवार्षिकी समारोह राष्ट्रीय समिति।

प्रकाशन : वेरीड रिद्मस; शैडो ऐण्ड सन्‌लाइट; प्रॉफ़ेट ऑव इण्डियन नेशनलिज़्म; सेलेक्टेड स्पीचेज़ ऐण्ड राइटिंग्ज़; वेलकम द मूनराइज; पोस्ट इण्डिपेण्डेन्स जेनरेशन; चैलेन्ज ऐण्ड रेस्पॉन्स।



भारतीय ज्ञानपीठ

उद्देश्य

ज्ञान की विलुप्त, अनुपलब्ध
और अप्रकाशित सामग्री का
अनुसन्धान और प्रकाशन
तथा लोक-हितकारी
मौलिक साहित्य का निर्माण

●

संस्थापक
श्री शान्तिप्रसाद जैन

अध्यक्षा
श्रीमती रमा जैन

●

मुद्रक : सन्मति मुद्रणालय, दुर्गाकुण्ड मार्ग, वाराणसी-५